ISSN 2348-8603

मानविकी एवं समाज विज्ञान की अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका

रिसर्च एलाइव

(द्विभाषिक त्रैमासिक शोध पत्रिका)

वर्ष : 2 अंक : 4 अक्टूबर–दिसम्बर 2015

प्रकाशक
लोक सेवा समिति
58, रायल होटल, विधानसभा मार्ग, हजरतगंज, लखनऊ

संरक्षक

प्रो0 महेन्द्र सिंह सोढ़ा

पूर्व कुलपति, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

सलाहकार परिषद्

प्रो0 जी0एन0 तिवारी
आई0आई0टी0, दिल्ली

प्रो0 बी0डब्ल्यू0 पाण्डेय
दिल्ली स्कूल ऑफ इको., दिल्ली वि0वि0

प्रो0 ध्रुवसेन सिंह
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ0 स्वप्निल दूबे
नेशनल युनिवर्सिटी ऑफ सिंगसपुर, सिंगापुर

प्रो0 हाकिंसन क्रिस्टन
वैक्ज़ा युनिवर्सिटी, स्वीडन

प्रो0 राज कुमार सिंह
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

सम्पादक मंडल

डॉ0 रचना गंगवार
भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ0 सुनीता साँवरिया
देशबन्धु कालेज, दिल्ली वि0वि0

डॉ0 सुधीर कुमार वर्मा
दयालबाग एजूकेशनल इंस्टीट्यूट, आगरा

डॉ0 आनन्द विश्वकर्मा
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ0 पूर्णिमा सिंह
आई0आई0टी0, दिल्ली

डॉ0 ऋचा के0 त्यागी
भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

सम्पादक

नीरज कुमार

प्रबन्ध सम्पादक

अमरनाथ सचान

सम्पादक

डॉ0 आशीष कुमार सिंह

मुद्रक

आर0ए0एम0 ग्राफिक्स
एल0जी0–21, पालिका बाजार, कपूरथला, लखनऊ

सम्पादक

लोक सेवा समिति
58, रायल होटल, विधानसभा मार्ग, हजरतगंज, लखनऊ

अनुक्रमणिका

1. **Impact of Girl's Education on the Society** 1-11
Neeraj Kumar, *Research Scholar*
Department of Social Work, University of Lucknow

2. **Gender Discrimination and Judicial Approach (With Special Reference to Personal Laws Affecting Women)** 12-21
Ram Naval, *Research Scholar*
Department of Law, University of Lucknow

3. **People's Rights to Groundwater in India** 22-30
Satyendra Kumar, *Research Scholar*
Department of Law, School for Legal Studies, Babasaheb Bhimrao Ambedkar University (A Central University) Lucknow

4. **Role of Financial Accounting Information in Alleviating Corporate Corruption** 31-39
Om Prakash, *Research Scholar*
Department of commerce, University of Lucknow

5. **Globalisation and Cultural Concepts** 40-44
Archana Pande, *Research Scholar*
Department of Sociology, BBAU, Lucknow

6. **महिला उत्पीड़न के सामाजिक–सांस्कृतिक कारक** 45-56
दीपेश कुमार राय, *शोधछात्र*
समाज कार्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

7. **भारत का रियासतों के साथ ब्रिटिश क्राउन के सम्बन्ध 'शिखर सत्ता' के संदर्भ में** 57-63
डॉ0 विकास कुमार सिंह, *असिस्टेंट प्रोफेसर*
माँ वैष्णो देवी लॉ कालेज, जुग्गौर, चिनहट, लखनऊ

8. **कृषकों में बढ़ती आत्महत्या की प्रवृत्ति का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन** 64-70
डॉ0 विनोद भारती,
पी0डी0एफ0, के0आई0एफ0, स्वीडन

9. **भारतीय सिनेमा में मानवाधिकारों के प्रति जनचेतना** **71-78**
डॉ0 तरुण कान्त त्रिपाठी, *असिस्टेंट प्रोफेसर*
पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, शिया डिग्री कालेज, लखनऊ

10. **नगर विकास कार्यक्रमों में विभिन्न अभिकरणों के मध्य समन्वय की स्थिति : एक विश्लेषण** **79-87**
संतोष कुमार, *शोधछात्र*
लोक प्रशासन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

11. **प्रगतिवादी आलोचना में परम्परा का प्रश्न** **88-94**
नितिन कुमार, *शोधछात्र*
हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

12. **महिला सशक्तिकरण और पंचायतीराज व्यवस्था : एक विश्लेषण** **95-103**
ऋषिकेश
लोक प्रशासन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

13. **प्राथमिक शिक्षा के सामाजिक–प्रशासनिक गतिरोध** **104-112**
संतोष कुमार सिंह, *शोधछात्र*
समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

14. **बालिकाओं में पोषण सम्बन्धी समस्याएँ** **113-116**
हिमांशु वर्मा, *यू0जी0सी0–नेट*
कुरसठ, हरदोई

15. **दूधनाथ सिंह के उपन्यासों में आधुनिकता बोध** **117-126**
अजय कुमार, *शोधछात्र*
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

दूधनाथ सिंह के उपन्यासों में आधुनिकता बोध

* अजय कुमार

दूधनाथ सिंह की कहानियों की ही भांति उनके उपन्यासों में भी आधुनिकता–बोध के समस्त तत्वों का समावेश दिखाई देता है। उपन्यास हिंदी गद्य साहित्य की महत्त्वपूर्ण विधा है। 'उपन्यास गद्य–प्रबंध का एक प्रधान रूप है जिसमें किसी चरित्र का देश–काल में स्वाभाविक चित्रण किया जाता है। वर्णन, चरित्र–विश्लेषण और वार्तालाप के द्वारा लेखक हमें देखे, सुने और अनुभूत जीवन के दृश्यों के साथ सजीव जीते–जागते व्यक्तियों की वास्तविक झांकी दिखलाता है। यह आधुनिक गद्य का एक महत्त्वपूर्ण रूप है।'[1] आधुनिक साहित्य में अन्य विधाओं की अपेक्षा उपन्यास साहित्य को अधिक लोकप्रियता मिली।

उपन्यास की लोकप्रियता का प्रमुख कारण यह है कि इसमें मानव जीवन के सजीव चित्र प्रस्तुत होते हैं। 'इसमें लेखक अत्यंत स्वच्छंद होकर अपने हृदय पटल पर पड़े हुए जीवन के जीते–जागते चित्रों को प्रस्तुत करता है। ..उपन्यासकार अपनी कृति में प्रकट और प्रत्यक्ष रूप में आता है और पात्रों के चरित्रों आंतरिक मनोभावों और विचारों पर प्रकाश डालता और टीका–टिप्पणी करता है। वह चरित्र–चित्रण के विश्लेषणात्मक और नाटकीय दोनों ही ढंगों का प्रयोग करता है और चरित्रों की परिचय–संबंधी सूचना तथा देशकाल या युग की पृष्ठभूमि का विवरण स्वयं उपस्थित करता है।'[2] यह कहा जा सकता है कि मानव को वास्तविक जीवन के दर्शन कराने और उसकी संवेदनाओं के बहुत करीब पहुंचने में सबसे सफल विधा उपन्यास ही रही है।

अस्तित्त्वबोध–

अस्तित्ववादी विचारधारा का मूल स्वरूप पाश्चात्य अवधारणा से अवतरित हुआ है। भारतीय साहित्य में इसका प्रादुर्भाव आधुनिकता के साथ ही हुआ। 'अस्तित्त्ववादी सुख की लालसा को ही निरर्थक मानते हैं, मिथ्या घोषित करते हैं। उनके लिए किसी प्रकार की भी सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, राजनीतिक दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक उन्नति मनुष्य को न तो पूर्णतः संतुष्ट कर सकती है और न सुखी। फलतः इन क्षेत्रों में किये जाने वाले सभी सामाजिक अथवा वैयक्तिक प्रयास निरर्थक हैं तो उन प्रयासों को करने वाले तथाकथित महापुरुषों का योगदान बेकार एवं भ्रामक। इन क्षेत्रों में की गई उन्नति ने मात्र एक ही कार्य किया है और वह है मनुष्य की स्वच्छन्दता को

* शोधछात्र, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

बाधित करने का काम। अस्तित्त्ववादी किसी प्रकार की भूतकालीन समाज–सुधार वैज्ञानिक, आर्थिक, राजनीतिक अथवा धार्मिक सुधार एवं उन्नति को व्यर्थ मानते हैं। वे इस प्रकार के कार्यों में स्वयं को न फँसाने के लिए भी कृत संकल्प हैं। उनकी धारणा है कि मनुष्य को कुछ भी करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। अस्तित्त्ववादियों की यह पूर्ण स्वच्छन्दता भले ही उन्हें घोर अराजकता, अशान्ति, संघर्ष और यहाँ तक कि मृत्योन्मुख ही क्यों न कर दे, इसकी उन्हें परवाह नहीं, क्योंकि मृत्यु को तो वह जीवन का अनिवार्य अंश मानते हैं।'[3] दूधनाथ सिंह के उपन्यासों में यथा स्थान अस्तित्त्ववादी विचारधारा का रेखांकन हुआ है।

अस्तित्त्वबोध के परिणाम स्वरूप अस्मिता बोध सामने आया जिसके कारण विमर्शों में भी लगातार वृद्धि देखी गयी। दूधनाथ सिंह के उपन्यासों में यह तत्त्व भी प्रमुखता से दिखाई देता है। 'निष्कासन' उपन्यास में वह लिखते हैं कि 'दलित लड़की हो तो धंधा करवाने की कोशिश करेंगे, घूस मांगेंगे और पैसा न हो तो कहेंगे उसके बदले कुछ और दो। आप सवर्ण लोग हैं, बुद्धिजीवी हैं। आप लोगों के पास सब कुछ है फिर भी कुछ और दो की आदत नहीं गयी। पहले निश्चिन्त जबरदस्ती थी, अब वही काम उत्पीड़न और धर्म के साथ।'[4] स्थिति अत्यंत खराब व सोचनीय है। जब वह लड़की अपनी काबिलियत और प्रतिभा के बल पर विश्वविद्यालय में प्रवेश पा जाती है तो भी लोग उसे चौन से रहने नहीं देते। उपन्यास का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

'लंबा झाड़ू पकड़ा दो भाइयों, ये पढ़–लिख कर क्या करेगी? एक लड़का जोर से बोलता है।

लेकिन लड़की खड़ी है तो खड़ी है।

'चलो यार जमादारिनों के मुँह लगते हो।' एक लड़का कहता है।'[5]

दूधनाथ सिंह के उपन्यासों में अस्तित्त्वबोध को विशेष अभिव्यक्ति मिली है। उनके पात्र वर्तमान की आधुनिकतावादी आपाधापी में कही खोते चले जाते हुए अपने अस्तित्त्व के प्रति विशेष सतर्क रहते हैं। उन्हें अपनी स्वयं की पहचान की चिंता है। उनके उपन्यासों में अस्तित्त्वबोध को प्रमुख रूप से स्थान मिला है।

नयेपन का आग्रह–

चूँकि दूधनाथ सिंह का स्वयं ही यह मानना था कि– 'हमने अपने लेखन से नये परिवर्तन की सूचना दी। क्योंकि हम पिछले वैचारिक कुहासे से ग्रस्त नहीं थे, इसलिए स्थितियों और वास्तविकताओं की सीधी, सहज पकड़ हमारे लिए आसान थी। हमारे सामने आज़ादी का दुखांत ही ज्यादा प्रमुख था और आज भी है।'[6] इससे यह स्पष्ट होता है उनके मन में चीजों के लेकर एक नया नजरिया था। उनके कथा साहित्य में कथ्य व विषय को लेकर खूब

नवीनता तथा भिन्नता दिखाई देती है। उसी प्रकार शिल्प और भाषा शैली के स्तर पर भी उन्होंने नवीनता का ही अवगाहन किया है। अपने उपन्यासों में उन्होंने इसी विचारधारा का परिचय दिया है।

वह कहते हैं कि 'मैं अपने आपको एक भारतीय लेखक इसी अर्थ में मानता हूँ कि मैं कुछ भी ऐसा नहीं लिख सकता जो हमारे चारों तरफ के माहौल से अलग हो। मेरी कोई भी रचना उठाकर अमेरिका या योरोप में रखकर उसकी पहचान दबाई नहीं जा सकती। ऐसा इसलिए नहीं कि मेरी किसी कहानी के पात्र का नाम भारतीय है। यानी कि सत्येन्द्र मल्होत्रा हटाकर अगर आप 'जॉन हीथ' कर दे तो भी मेरी कहानी की 'भारतीय पहचान' आप नहीं दबा सकते। वह अपने सारे भौगोलिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक रचाव में एक भारतीय कथा–कृति ही रहेगी क्योकि भारतीय मनुष्य की जो विनम्रता है, अन्तर्मुखता है, फिलहाल जो एक परिणामहीन गुस्सा है– आज के भारतीय युवा वर्ग का, वही उसे एक भारतीय कहानी बनाता है।'[7] यही विशेषता उनके लेखन में दिखाई देती है। वह निरंतर मौलिकता एवं नवीनता के प्रति आग्रही रहे।

उनके लघु उपन्यास 'नमो अन्धकारं' के विषय को लेकर भी यह कहा जा सकता है कि यह सर्वथा नवीनता का बोधक और अवगाहक है। वह जिस विषय का चयन करते हैं उसके साथ ईमानदारी और साहस के साथ निर्वहन करते हैं। इसमें अनैतिक यौन सम्बन्धों का चित्रांकन किया गया है। 'नमो अन्धकारं' के गुरु पात्र का निरूपण सर्वथा नवीनता के साथ उन्होंने किया है। वह लिखते हैं– 'गुरु के बिना हमारा जीवन सूना है। हम बहुत तिड़तिड़ाते हैं। ठिन्न–ठिन्न करते हैं। अक्सर गुरु ऐसे–ऐसे काम कर बैठते हैं, इतना नुकसान पेल देते हैं, ऐसी अंडस में दाल देते हैं कि फटने लगती है। हर जोगी सोचता है कि बस, बहुत हो गया। गुरु की ऐसी की तैसी, लेकिन बाहर बोलने की हिम्मत नहीं। पता नहीं गुरु कौन सा नया दाँव चल दें और आपको पता ही न चले। गुरु का पिसार बहुत बड़ा है। वाणी में अद्भुत शक्ति है। अफवाहों का अतुल भंडार है गुरु के पास। कनफूँको की कमी नही है। अगर गुरु को पता चल गया बेटा, कि तुम फरजी बन्ने के फेर में गुरु से ही ऐड़ ले रहे हो तो समझ लो, ऐसी लंगड़ी लगेगी कि हमेशा के लिए गुडुम इसलिए गुरु से द्रोह पालना नादानी है।'[8] यह एक अत्यंत रहस्यलोक की कथा है जो हमारे समाज में सर्वत्र व्याप्त है। इसे लिख पाना बहुत सरल नही था किन्तु दूधनाथ सिंह द्वारा इसे बहुत ही साधारण रूप से अभिव्यक्त कर असाधारण बना दिया।

स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों की जटिलता, असफल प्रेम और दाम्पत्य–

दूधनाथ सिंह की कहानियों के साथ ही उपन्यासों में भी स्त्री–पुरुष समस्याओं को प्रमुखता से उभारा गया है। 'प्रेम कथा का अंत न कोई' की भूमिका में तो उन्होंने इस बात पर विस्तृत रूप में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है– 'ये कहानियां ज्यादातर विफल प्रेम (और विफल दाम्पत्य) की कहानियाँ हैं। लेकिन उनमें पौरुष–प्रधान हिंसा नहीं है। इसकी जगह विफलता की नाजुक,उदास और सुसंस्कृत स्वीकृति है। इस रूप में ये कहानियां मध्यवर्गीय या सामन्ती समाज की हिंसक मनोवृत्तियों से मुक्त हैं। स्त्री के खिलाफ पिस्तौल, पेट्रोल, किरासन, जहर या गलाकाट, गला–दाब हथियारों को इस्तेमाल यहाँ नहीं है। कहा जा सकता है कि जो 'यथार्थ' को एक टोटका समझते हैं और मानवीय जीवन का जिनका परिचय महज़ अखबारी है, उनके लिए ये कहानियां अवास्तविक भी हैं। जबकि हम सभी और लोग जानते हैं कि हमारे समाज में (उस दौर में नहीं, आज भी) विफल प्रेम और उससे भी अधिक विफल दाम्पत्य एक तथ्य है– एक ऐसा तथ्य, जिसे कई कारणों से छिपाया–दुराया जाता है। मुँहबंद फोड़े को मुँहबंद रखना ज्यादा खतरनाक और ज्यादा अवैज्ञानिक होता है। सामाजिक वर्जनाएँ और संकीर्णधर्मी लोग यही करते हैं। इन कहानियों में वह छद्म, वह छिपाव–दुराव और वह झूंठी बचावधर्मिता नहीं है। प्रेम को पाने और उसके भीतर से जिन्दगी को बांधे रखने के लिए जबरदस्त इच्छाओं का संसार इन कहानियों में व्यक्त है। इच्छाओं का यह संसार दाम्पत्य के भीतर और बाहर दोनों जगहों पर है। इसलिए पुराने और परिचित अर्थों में ये परम–कथाएं नहीं हैं, प्रेम को लेकर इसके पात्र अपने अधिकार–क्षेत्र से बार–बार बाहर जाते हैं।'[9]

'नमो अन्धकारं' में 'विवाह संस्था और उसके विघटन पर तीखी टिप्पणी है जिसे देखकर मध्यवर्ग की पतनशीलता उजागर होती है। दूधनाथ दिखलाते हैं कि समाज में ही नहीं, नारी–पुरुष के आत्मीय सम्बन्धों में भी पुरुष वर्चस्व की विकृति साफ़ देखी जा सकती है। इसी तरह प्रतिबद्ध लेखन की सक्रिय तस्वीरों में जो मोल–भाव चलता है, वह मात्र सवालों के दायरे से बाहर निकल कर व्यापारगत काइयांपन और नैतिकताविहीन सोच से एकमेक नज़र आता है। कला के स्तर पर 'नमो अन्धकारं' की तल्खी इतनी ज्यादा है कि पहली नज़र में वहां सार्थक विचार जैसी चीज़ बेमानी लगती है। निश्चय ही दूधनाथ ने इस कहानी को लिखते वक्त समाज को उस आदिम तस्वीर का रंग दे दिया है, जहाँ हिंसा, अमानवीयता, नफ़रत, धर्म, आदर्श और नैतिकता के बीच मौजूद आधारभूत फ़र्क मिट गया दिखता है।'[10] उनके लेखन का मुख्य ध्येय यथार्थ का अंकन करना है। और यह करने के लिए उनके पास पर्याप्त सामर्थ्य भी है, जिस कारण वह इसमें सफलता भी प्राप्त कर सके।

अपने इसी उपन्यास में एक स्थान में वह लिखते हैं कि 'तब फिर ऐसा क्यों हुआ? शायद ऊब। शायद अपनी पत्नी की अति सुलभता। शायद बासीपन। शायद स्त्री–शरीर की अनजान, रहस्यमयी नवीनता की ललक। शायद फिर से प्रेम। पता नही क्यों हुआ? लेकिन सभी जालों को छिन्न भिन्न करके मेरी वासना एक दिन फाट पड़ी और मैं, 'मठ' के बगल वाले घर में घुस लिया। मेरा सारा जोग–बैराग, जोगियों का संग–साथ, चरित्र का संचित धन पत्नी और बच्चों की पावन स्मृति, लोक–लाज सब बहा गया। मैं दुनिया भूल बैठा।'[11] यह स्थिति किसी एक स्त्री अथवा एक पुरुष की नहीं है। उपन्यास का पूरा तंत्र इस भ्रष्ट तंत्र का हिस्सा है। यह सभ्य कहे जाने वाले समाज के चेहरे का दूसरा और छिपा हुआ पक्ष है। उनके कथा–साहित्य में अधिकाँश जगह विफल दाम्पत्य का निरूपण हुआ है। स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों की जटिलता यहाँ प्रमुख रूप से रेखांकित दिखाई देती है। 'नमो अन्धकारं' में गुरु और उनके जोगी सभी गर्त तक भ्रष्ट हैं।

एकाकीपन, कुंठा और त्रास–

आधुनिक परिवेश के मनुष्य की बहुत बड़ी विडम्बना है कि वह अपने जीवन में घोर अकेलेपन को महसूस करता है। उसके भीतर स्वयं को लेकर अपने परिवेश को लेकर बहुत कुंठा का अनुभव होता है। 'निष्कासन' उपन्यास की लड़की भी इसी त्रासदी का शिकार है– 'लड़की को लगा, उसे गश आ रहा है। उसने सिर को झटक दिया। उसका बड़े जोरों से मन हुआ कि वह तीर की तरह निकले और हास्टल के बाहर सड़क पर भाग जाय और खूब ज़ोर से चीख़े–चिल्लाए। वह माथा पकड़ कर बैठ गयी। उसे लगा, वह किसी अति भयावह सपने में फँसी हुई है। फिर उसकी नज़रें चारों ओर शीशों पर गयीं, जिसमें अनेक कोणों से उसकी दुबली, भरी–भरी, कठिन काया उजागर थी। उसने उठ कर फुर्ती से दरवाज़ा बंद कर लिया। फिर उसने साड़ियों से पटी अलमारी को देखा, शृंगार के अनचीन्हे अंबार को, लिपस्टिकों की छोटी–छोटी कई पेटियों को, इत्र की तमाम शीशियों को। वह थोड़ी सुस्थिर हुई और यह सोच कर मन को दिलासा दिया कि शायद मेहमानदारी का यही रिवाज़ होगा। उसने अपने वस्त्र धीरे–धीरे उतारे और फिर उस जलसाघर में वह अनेक कोणों से आधा–तीहा निर्वसन हो गयी। वह अपने सही छिपने के लिए बार–बार आँखें मूँदती और फिर अपने हड़ियल भरे–पूरे यौवन को बार–बार कन्खियों से झाँक कर देखती।'[12] एक स्त्री को किसी के सामने सशर्त नग्न करना मनुष्यता का पतन है, किन्तु व्यवस्था से जूझता, लड़ता और पराजित होता आदमी इसका हिस्सा बनने के लिए लाचार और मजबूर है।

'निष्कासन' उपन्यास में वह लिखते हैं कि 'शताब्दी, जो दमन और त्रास और विचारों की बड़बोली और विफल स्वप्नों के इन्द्रजालिक चीत्कार

और एक शालीन ले–लपक के नारकीय उत्सवान्त में लिथड़ी हुई है; जिसमें दुस्साहसों का अद्भुत विलास है; जिसमें आदमी के दिमाग का द्रुतगामी चमत्कार है; जिसमें अँधेरे के आदिकालीन पर्दों के उठने से चकमक प्रकाश का चौंधियाता हुआ भय सर्वव्यापी बनने के प्रयत्न में चुपके–चुपके दहाड़ रहा है; जिसमें इंसानियत की उठती हुई लौ को बार–बार फूँक मार कर बुझाने की कोशिशें हैं; जिसमें हर मोड़ पर रोशनियों को लीलते हुए ब्लैक होल हैं; जिसमें सच और झूठ की चमक–दमक साथ–साथ ही कदम पर ताल देती हुई चलती है; जिसमें असहायता बार–बार अंगारे की तरह फूट कर लपक मारती है। अगर शताब्दी के अवसान के इस दार्शनिक बखान से नीचे उतरें तो ऐसे कहेंगे कि, जहाँ प्रजातंत्र की हुमक है; मानवाधिकारों की बड़ी चहल–पहल है, दबे–कुचले आदमी को बचाने और बढ़ाने के लिए जहाँ हर कदम पर कुकुरमुत्तों की तरह अपना छोटा–बड़ा छाता पसारे ग़ैर सरकारी संगठन हैं; जहाँ मानवाधिकार, अस्मिता और आत्मसम्मान की किलकती धौंस के सौजन्य बिलास रहे हैं; जहाँ तिकड़म से पायी या खोयी विजय–पराजयों का उल्लास–विलाप है..।'[13]

साम्प्रदायिकता–

दूधनाथ सिंह द्वारा रचित 'आखिरी कलाम' बाबरी मस्जिद ध्वंस को केंद्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है। इस उपन्यास के प्रमुख पात्र तत्सत पाण्डेय है। उनके माध्यम से लेखक ने 'समाज को बदलने, राजनीतिक चालों को ध्वस्त करने, धर्म के विखंडन को रोकने, अंध विश्वास और अंध आस्था जैसी रूढ़िवादी विचारधाराओं पर अंकुश लगाने की कोशिश की है।' उपन्यास कुल चार खण्डों में विभक्त है– गृह–जंजाल, प्रस्थान–पर्व, देव–श्मशान एवं पुनश्च। प्रथम तीन के नायक आचार्य जी हैं। अन्तिम खण्ड 'पुनश्च' 6 दिसम्बर 1992 की घटना के 10 वर्ष के बाद सर्वात्मन के अयोध्या में पुनःभ्रमण पर केन्द्रित है। प्रो. तत्सत पाण्डेय तो सभी धर्मों को एक षडयन्त्र मानते हुए कहते हैं– 'धर्म ही एक षडयन्त्र है तो जाहिर है, धर्म निरपेक्षता का क्या मतलब। और यह सच है सर्वात्मन, कि धर्म एक वृहद्, अनजाना षड्यन्त्र है मानवता के खिलाफ। धर्म एक ठगी है। धर्म डराता है। अन्धत्व प्रदान करता है। धर्म कहता है, 'अन्धे होकर चलो, तुम्हारी लाठी मैं हूँ।'[14]

दूधनाथ सिंह का मानना है कि धार्मिक विद्वेष की भावना की तरह जातिवादी भेदभाव भी साम्प्रदायिकता के अन्तर्गत ही आता है। यह उपन्यास 1992 के राम जन्मभूमि की घटनाओं को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। आचार्य जी से भारतीय समाज में बढ़ती साम्प्रदायिकता का सामयिक विश्लेषण कराकर उपन्यासकार ने धर्म के ठेकेदारों और राजनीतिज्ञों द्वारा फैलाई जा रही घृणा, भेदभाव और वैमनस्यता के प्रयासों का उद्घाटन किया है। 'साम्प्रदायिकता और उससे उत्पन्न दंगों से वातावरण में और लोगों के

दिलों में जो अवांछनीयताएँ पैदा होती हैं, उनमें परस्पर अलगाव, धार्मिक ध्रुवीकरण, उन्माद जैसी चीजें ही नहीं हैं, अनिश्चय, आशंकाएँ, किंकर्तव्यविमूढ़ता आदि भी है। यहाँ एक तरफ डर और दहशत है तो दूसरी तरफ सन्नाटा और शून्य भी है। कुल मिलाकर यह एक झुटपुटे जैसा परिदृश्य है, जहाँ कुछ भी हो सकता है और कुछ नही भी। एक धुर अस्पष्टता और अहेतुकता और असम्बद्धता। जैसे आदमी की पैरों तले की ज़मीन ही खिसक गयी हो और आगे कोई ज़मीन मिलेगी भी या नही, स्पष्ट नहीं। इस क्षेत्र के बहुत सारे जनसंख्या–समूह अरसे से इस नियति का कुचक्र भोगते चले आ रहे हैं और विडम्बना यह कि रह–रह कर समय के थोड़े–बहुत अंतराल के बाद बार–बार यह दृश्य उपस्थित हो लेता है।'[15]

इस घटना के उपरान्त पूरा देश साम्प्रदायिकता के दुष्प्रभाव से बच नहीं सकेगा। 'साठोत्तरी दौर के कहानीकार दूधनाथ सिंह तत्कालीन ऐतिहासिक दौर के बीच मानवीय संवेदना में दृष्टिगोचर हो रहे नए विडंबनात्मक रुझान के सर्वप्रमुख चितेरे हैं। यह विडंबनात्मक रुझान देश की आजादी के सुखद एहसास के कालांतर में गहन तिक्तता में बदल जाने की वस्तुस्थिति से पैदा हुई है।'[16] यह एक बहुत बड़ी त्रासदी थी जिसने समाज में व्यापक रूप से प्रभाव डाला। साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा और लगभग सभी विधाओं में इस विषय को रेखांकित किया गया। आधुनिकता बोध की दृष्टि से अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि दूधनाथ सिंह के लेखन में वह सभी विशिष्टताएं सम्मिलित हैं जो आधुनिकता बोध के लिए आवश्यक हैं।

मृत्युबोध–

आधुनिकतावादी साहित्य में जिस प्रकार अस्तित्त्वबोध को प्रमुख स्थान दिया गया उसी प्रकार मृत्युबोध भी उसका प्रमुख घटक माना गया। दूधनाथ सिंह ने भी मृत्यु बोध को अपने उपन्यासों में प्रमुख स्थान दिया है। वह मृत्यु को जीवन का अनिवार्य घटक स्वीकार करते हैं।

चूँकि मृत्यु के पास पहुँचते हुए जीवन समाप्त होने लगता है। 'जब एक आदमी बूढ़ा हो जाता है और वह किसी काम का नही होता। और मान लो उसका दिमाग अभी काम करता हो और फिर काम न करता हो। और वह जाने कि उसके साथ ऐसा हो रहा है। वह याद रखने और भूलने के बीच में जब झूल रहा हो। जब उसे कोई इधर से, उधर से खींचकर मेंड़ पर लाए और फिर डगमगाने के लिए खड़ा कर दे। जब दुःख हों या दुःख की विस्मृति का सन्नाटा हो–तब होगा ही। तब ऐसा ही होगा।'[17] यह वह विचार व भाव है जो यद्यपि जीवन का शाश्वत सत्य है किन्तु फिर भी लोग इससे दूर

भागना चाहते हैं। दूधनाथ सिंह ने बहुत ही सूक्ष्मता और बारीकी के साथ इस विषय पर विस्तारपूरक प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

ईश्वर के प्रति अनास्था–

आधुनिकता के आगमन के उपरान्त जब नीत्से ने यह घोषणा की कि 'ईश्वर मर गया है'। उसके बाद से साहित्य में धीरे–धीरे नास्तिकता और ईश्वर के प्रति अनास्था का दौर दिखाई देने लगा। लोगों ने ईश्वर के अस्तित्त्व पर प्रश्न चिह्न लगा दिया। धर्म और दर्शन के अस्तित्त्व पर भी सवाल उठाये गए। दूधनाथ सिंह ने भी यथास्थान इसका निरूपण किया है। उनके उपन्यासों में अनेक स्थान पर ईश्वर के अस्तित्त्व पर प्रश्नचिह्न दिखाई देता है। जैसे अपने उपन्यास 'आखिरी कलाम' में वह लिखते है– '...भारतीय धर्मशास्त्र और लगभग सारे धर्मशास्त्र और बहुत हद तक भारतीय दार्शनिक प्रणालियाँ भी तर्कातीत पर आधारित हैं। वे अमूर्तन की सृष्टि करती हैं। फिर उस अमूर्तन के लिए तर्क। जो असत् है, जो है ही नही, जो न कुछ है उसके लिए तर्क। और वह तर्क भी पूर्व–नियत अंधा। बस यह कि विश्वास करना है। जब विश्वास ही करना है तो तर्क के लिए जगह कहाँ ? अगर आप जगह बनाने की कोशिश करते हैं, अगर आपके मन में संदेह ने जन्म ले लिया और उसके चलते आपने तर्कातीत पर तर्क करना शुरू किया, जैसे अर्जुन ने किया तो उसे नाकाम करने के लिए महारूप–दर्शन। ... कोई नही पूछता कि अचानक यह 'ईश्वर' कहाँ से टपक पड़ा। और अगर सारी क्षणभंगुर वस्तुओं में ईश्वर का निवास है तो क्या वह भी क्षणभंगुर नहीं हुआ ? वह सनातन कैसे हो गया ? क्योंकि उसे मान लिया गया है। उसका नकार वर्जित है। वह तर्क और व्याख्या से परे है। उस पर तर्क धर्म–विरुद्ध है। इसीलिए मैंने कहा कि धर्मशास्त्र और भारतीय दार्शनिक प्रणालियाँ अपने सारतत्त्व में एक असत् पर आधारित है।'[18]

भ्रष्ट एवं अवसरवादी राजनीतिक व्यवस्था का निरूपण–

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था दोषमुक्त न होकर बहुत सी विसंगतियों से घिरी हुई है। आम एवं साधारण आदमी इस राजनीतिक व्यवस्था में स्वयं को बहुत सहज महसूस नहीं करता। 'दूधनाथ सिंह की बौद्धिक संरचना व्यापक रूप से संवादधर्मी रही है, लेकिन विवाद की कीमत पर भी वे अपनी रचनात्मकता से समझौता नहीं करते। उनके उपन्यासों 'नमो अन्धकारं' और 'निष्कासन' को लेकर खासा विवाद रहा था। इन दोनों ही उपन्यासों में वास्तविक जीवन की छाया दूर तक देखी पहचानी जा सकती है, यहां तक कि इसके पात्र भी। 'नमो अन्धकारं' में जहां इलाहाबाद के साहित्यिक समाज में हलचल मचाई, वहीं 'निष्कासन' दलित विमर्शकारों के निशाने पर रही। इस सम्बन्ध में दूधनाथ सिंह का स्वयं का मानना है कि वे अपनी रचनाओं में 'वास्तविक चरित्रों का पीछा नहीं करते, भले ही जहां तहां पात्र जीवन की

प्रतिच्छाया अवश्य होते हैं।'[19] यह सच है कि वे अपनी रचनाओं में सत्य और यथार्थ के निकट रहते हुए इतिहास को फलांगते नहीं। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि 'निजी और कल्पित यथार्थ से कभी भी बड़ा लेखन नहीं हो सकता।'

राजनीति पर लिखते हुए भी वह न्याय करते हैं। कहीं भी यह नहीं लगता कि वह किसी विशेष विचारधारा का पोषण कर रहे हो। बल्कि वह बेबाक होकर यथार्थ का निरूपण करते हैं। 'नमो अन्धकारं', 'निष्कासन', 'आखिरी कलाम' आदि उपन्यासों के साथ ही साथ दूधनाथ सिंह की अनेक कहानियां हैं जो इस विचारधारा का पोषण करती हैं।

एक ऐसा समाज जिसमें निरंतर विघटित होते सामाजिक मूल्य और मान्यताएं विकास कर रहे हो, ऐसे समाज का पतन भी दिखाई देता है। इन्हीं सब कारणों से मनुष्य में अस्तित्त्ववादी विचारधारा का विकास होता है और वह अपने होने की तलाश करता है। दूधनाथ सिंह की कहानियों में इन सभी प्रवृत्तियों का विकास प्रमुखता से हुआ है। कहानी में व्यापक मानवीय सत्यों का अन्वेषण या उद्‌घाटन होता है, केवल तथ्यपरक अभिधामूलक सत्यों का नहीं। यह साधारण वर्णन से अलग होती है क्योंकि उसमें जीवन की व्याख्या होती है जो उसे सार्थकता प्रदान करती है तथा दिशा–निर्देश भी। इसमें सीमित तथा छोटे पैमाने पर जीवन का एक सुसंगठित, अपने में परिपूर्ण चित्र उपस्थित किया जाता है। कहानी का विकास अपेक्षाकृत कम समय में हुआ तथा आकार–प्रकार की विविधता में समृद्ध हो गया। कथानक का सरल व जटिल होना कथाकार का अपना कौशल है। कथा संगठन की विशेष बात यह है कि उसे मौलिक होना चाहिए। सुगठित होने के साथ ही उसमे रोचकता का गुण भी होना चाहिए। मनोरंजक अथवा उद्देश्यपरक होना भी आवश्यक है। 'कहानी का मुख्य तत्त्व कुतूहल है। यही किसी न किसी रूप में कहानी में उपस्थित रहकर कहानी की रोचकता को बढ़ाता और हमें प्रारम्भ से लेकर अंत तक पढ़ने को विवश करता है।

भारतीय सामाजिक संरचना में वर्ग संघर्ष और साम्प्रदायिकता का हमेशा से एक मुख्य तत्त्व रहा है। किसी भी साहित्यकार के लिए अपनी समकालीन परिस्थितियों को अनदेखा करना संभव नहीं होता है। उसे देखना और यथास्थिति में उसे स्वीकार कर लेना यद्यपि कुछ दुरूह कार्य है किन्तु साहित्यकार इससे गुजरता है। दूधनाथ सिंह का सम्पूर्ण साहित्य उनके अनुभवों का प्रामाणिक दस्तावेज है।

निष्कर्षतः दूधनाथ सिंह के साहित्य की मूलभूत प्रवृत्तियों का अध्ययन करने के साथ ही उनमें निहित आधुनिकता बोध के तत्वों का रेखांकन करने का प्रयास किया गया है। उनके लेखन में आधुनिकता के समस्त तत्वों का समावेश मिलता है। उनके लेखन में परम्परा से मुक्ति एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का मुख्य रूप से रेखांकन किया गया है। वह जिस समाज को अपने लेखन

में उजागर करते हैं वह आधुनिक स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों की जटिलता से भरा हुआ है जहाँ असफल प्रेम और दाम्पत्य बहुत सामान्य बात है। व्यक्ति अपने परिवेश और समाज से निराशा हो चुका है। कुंठा, संत्रास, ऊब व अकेलापन उसकी नियति बन गयी है। व्यक्ति नितांत अकेलेपन का शिकार है और उसके चारों ओर अजनबीपन व विसंगतियों का बोलबाला है। इसेक साथ ही दूधनाथ सिंह के कथा साहित्य में मध्यमवर्गीय समस्याओं का यथार्थ निरूपण दिखाई देता है। घोर निराशा और कुंठा में व्यक्ति के भीतर ईश्वर के प्रति घोर अनास्था का विकास होने लगा। और उसने ईश्वर की सत्ता पर प्रश्नचिह्न लगाना प्रारम्भ कर दिया। इसी कारण धार्मिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह भी पनपता है।

संदर्भ

- काव्यशास्त्र, भगीरथ मिश्र, पृ0–73
- काव्यशास्त्र, भगीरथ मिश्र, पृ0–79–80
- पाश्चात्य काव्य शास्त्र अधुनातक संदर्भ, डॉ सत्यदेव मिश्र पृ0–367
- निष्कासन, दूधनाथ सिंह, पृ0–111
- निष्कासन, दूधनाथ सिंह, पृ0–26
- कहा सुनी, दूधनाथ सिंह, पृ0–16
- कहा सुनी, दूधनाथ सिंह, पृ0–57
- नमो अन्धकारं, दूधनाथ सिंह, पृ0–15
- प्रेम कथा का अंत न कोई, दूधनाथ सिंह, भूमिका
- आजकल, दिसम्बर, 2016, पृ0–09
- नमो अन्धकारं, दूधनाथ सिंह, पृ0–30
- निष्कासन, दूधनाथ सिंह, पृ0–44
- निष्कासन, दूधनाथ सिंह, पृ0–51
- आखिरी कलाम, दूधनाथ सिंह, पृ0–150
- कहानी की अंदरूनी सतह, शभु गुप्त, पृ0–116
- दूधनाथ सिंह की साठोत्तरी दौर की कहानियाँ, राजीव कुमार, हिंदी समय.कॉम
- आखिरी कलाम, दूधनाथ सिंह, पृ0–38
- आखिरी कलाम, दूधनाथ सिंह, पृ0–34
- दूधनाथ सिंह की साठोत्तरी दौर की कहानियाँ, राजीव कुमार, हिंदी समय.कॉम